समावेशी शिक्षा - आगे की राह

प्रमिला बालासुन्दरम

"समावेशी शिक्षा" लगभग विश्व भर में स्वीकार्य मुहावरा बन चुका है। इसके बावजूद लगता है कि अब भी शब्द "समावेशी" की व्याख्या और उसके अमल में कुछ अन्तर हैं। समावेशी शिक्षा की अवधारणा अलगावी, असमावेशी नीतियों और प्रथाओं को चुनौती देने की वैश्विक मुहिम के तौर पर उभरकर आई है और मुख्यधारा के स्कूलों में सभी बच्चों की सीखने सम्बन्धी आवश्यकताओं से रू–ब–रू होने का प्रभावी दृष्टिकोण बन गई है। संक्षिप्त में, 'समावेश' इस बात का संकेत है कि अक्षमता से जूझते लोगों को शैक्षिक, रोजगार की, उपभोक्ता के तौर पर, मनोरंजक, सामुदायिक और घरेलू गतिविधियों में पूर्ण रूप से हिस्सेदारी के लिए मौका हो। इसमें बौद्धिक तौर पर अक्षम लोगों की बात भी शामिल है। विशेषतौर से इन लोगों के लिए स्वीकार्य जीवन–शैली की खोज कई मील–पत्थर पार कर चुकी है, जैसे कि सामान्यीकरण का सिद्धान्त, एकीकृत शिक्षा, और अन्त में, यू.एन.सी.आर.पी.डी.(युनाइटिड नेशन्स कन्वेन्शन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसएबिलिटीज़)।

बौद्धिक अक्षमताओं वाले बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएँ पूरा करने की सम्पूर्ण रणनीति पिछले एक दशक में बहुत हद तक परिवर्तित हुई है और भारत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली घटनाओं की गति के साथ चलने की कोशिश में है। मगर हमें समझना चाहिए कि जो पश्चिम के लिए ठीक है आवश्यक नहीं कि वह भारत के लिए भी सही होगा। अब तक के अमल का नतीजा है कि बौद्धिक अक्षमता वाले बच्चों के लिए अलग से विशेष शैक्षिक व्यवस्थाएँ की गई हैं। मगर इसकी वजह से सामाजिक स्तर पर उन्हें अलगाव और पृथकता का सामना करना पड़ा है। बच्चे के जीवन की शुरुआत से ही अलग–अलग संसार बना दिए जाते हैं। स्कूल के पहले साल से ही बच्चे पर समाज का प्रभाव आने लगता है। इसके विपरीत, समावेशी शिक्षा एक अधिक समावेशी ऐसे समाज की बुनियाद रख सकती है जिसमें "भिन्नता" को स्वीकार्य माना जाए और उसे मानवता तथा उसके विभिन्न रूपों के हिस्से के तौर पर मूल्यवान समझा जाए। इसलिए समावेशी शिक्षा के लिए बुनियादी तर्क केवल शैक्षिक ही नहीं है, उसके लिए ठोस सामाजिक और नैतिक तर्क भी हैं। हमें पृथकता के खतरों और लम्बे दौर में उसके प्रभाव के बारे में भी सचेत रहना चाहिए।

शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था में समावेश की बात को कैसे लागू किया जाए? कुछ स्थितियों का सामना करते हुए उनसे सम्बोधित होना होगा। सर्वप्रथम हमें समझना होगा कि समावेशी शिक्षा स्कूल के द्वार पर ही समाप्त नहीं हो जाती। उसकी पहुँच प्रशिक्षण, रोजगार और अपने लिए सबसे उपयुक्त जीवन–शैली के चयन के मौकों तक जाती है। इसका अर्थ है कि बौद्धिक तौर पर अक्षम लोग भी अपने निर्णय स्वयं ले पाएँ, विशेषतौर से उन पक्षों पर जो उनके जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। और इसका अर्थ एक ऐसे जागरूक समुदाय का होना है जिसमें बिल्कुल निकट परिवार और वृहद समुदाय से मदद भी शामिल हो। दूसरा, हमें उन बच्चों के माता–पिता से भी प्रतिक्रियाओं की आशा रखनी चाहिए जिनके बच्चे अक्षमता के शिकार नहीं हैं क्योंकि इसके बारे में बहुत–सी आशंकाएँ और गलत व्याख्याएँ हैं। ध्यान में यह भी रखना होगा कि भारत में एक अलग ही प्रस्थान–बिन्दु है क्योंकि हमारे पास



शिक्षा के पश्चिमी मॉडल पर आधारित स्थापित स्कूली व्यवस्था पहले से मौजूद है।

कुछ महत्त्वपूर्ण बदलाव लाने होंगे। सबसे बड़ा सवाल है – क्या हमें शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था को ध्वस्त करना होगा और भूमिकाएँ तथा दायित्व फिर से स्थापित करने होंगे? स्पष्ट है कि हम यह तो नहीं कर सकते। अक्षमताओं से जूझते बच्चों को विशेष किस्म के शिक्षक तो चाहिए, उन्हें विशेष किस्म के संसाधन, विशेष कार्य–प्रणालियाँ और कभी–कभी विशेष किस्म का वातावरण भी चाहिए होता है। ये तथाकथित 'विशेष प्रणालियाँ' आमतौर पर अच्छी, बाल–केन्द्रित शिक्षण प्रथाओं से अधिक कुछ नहीं हैं जो वैसे भी सब बच्चों के लिए लाभदायक होंगी। ध्यान ऐसे हालात बनाने के तरीके ढूँढने पर केन्द्रित होना चाहिए जो विद्यार्थियों की विविधता के लिए गुंजाइश रखें और सब बच्चों के सीखने में मददगार हों। चुनौती केवल यह नहीं है कि विशेषज्ञ शिक्षाविदों की दक्षताएँ प्रयोग में लाई जाएँ बल्कि यह भी कि नियमित स्कूलों में शिक्षकों की मदद के लिए तरीके निकाले जाएँ ताकि वे इन विशेषज्ञ शिक्षाविदों के साथ आदान–प्रदान के दम पर कक्षा में विविधता से मुखातिब हो पाएँ।

अनुसंधान से पता चलता है कि सामान्यतौर पर अच्छा शिक्षण बाल–केन्द्रित शिक्षा पद्धति और शिक्षा सम्बन्धी प्रेरक माहौल पर आधारित होता है। यह मानकर चलना सही नहीं है कि तथाकथित विशेष तकनीकें विशेष शिक्षकों द्वारा ही प्रदान की जा सकती हैं। इसलिए समावेश का सम्बन्ध विशेष शिक्षा को अधिक समावेशी बनाने से नहीं है बल्कि सामान्य शिक्षा को समावेशी बनाने के बारे में है। अधिकतर दक्ष शिक्षक इस सम्बन्ध में जागरूक हैं और अपनी विशेषज्ञता को इसके लिए प्रयोग में लाते हैं। और यह विषमता तथा विविधता लिए हुए समूह में सबसे बेहतर हो पाता है – यह अच्छा भी है क्योंकि जीवन भी वैविध्य भरा ही होता है। विश्व भर में जहाँ भी स्कूलों में समावेशी शिक्षा है, वहाँ से प्राप्त प्रमाण से ज्ञात होता है कि अक्षम बच्चों को अन्य बच्चों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। यह नहीं है कि विशेष–शिक्षा के शिक्षक लुप्त हो जाएँ। उनकी आवश्यकता मुख्य धारा के स्कूलों में अक्षमता से जूझते बच्चों के साथ होने वाले काम में मदद सम्बन्धी नए दायित्व निभाने के लिए रहेगी – उनका काम बदल जाएगा। अब उन्हें विशेष–शिक्षा के विशेषज्ञों से मदद के सहारे अक्षमता के बारे में अधिक ज्ञान हासिल करने के लिए प्रयास करने होंगे और इन स्थितियों को सुलझाने के लिए, उन पर प्रतिक्रिया के लिए, तौर–तरीके विकसित करने होंगे। इसके लिए पाठ्यचर्या में बदलाव, विषयवस्तु और शिक्षण के तरीकों आदि पर पुनर्विचार की



आवश्यकता हो सकती है। इससे भी बढ़कर, आवश्यकता पड़ सकती है रचनात्मक तरीकों को चिह्नित करने की, जिनकी मदद से कक्षा में बच्चों की विभिन्नता से सम्बोधित हुआ जा सके। कक्षा का कमरा सीखने के बहुत से मौके देता है क्योंकि बच्चे अपने समकक्षों को स्वीकारने और सहायता से भी सीखते हैं – और यहीं से समावेश की शुरुआत होनी चाहिए।

भारत में एक ओर तो विशिष्ट शैक्षिक संस्थाओं और दूसरी ओर सामान्य, गरीब संस्थाओं के बीच की विषमता इतनी अधिक है कि उसके बारे में शायद बात भी नहीं की जा सकती। हमें इन स्कूलों की वर्तमान स्थितियों की पड़ताल करनी चाहिए। 40 या इससे अधिक विद्यार्थियों पर 1 शिक्षक के अनुपात वाली कक्षाओं की स्थिति में तो समावेश की बात लागू करने से पहले गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। इसके मुख्य तत्वों को शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों का हिस्सा होना चाहिए लेकिन और भी महत्त्वपूर्ण है कार्यरत शिक्षकों के प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाना। अन्य देशों के अनुभव ने दिखाया है कि एक छोटे प्रशिक्षण–सत्र के मुकाबले पूरे स्कूल को शामिल करते हुए निरन्तर होने वाले स्कूल–आधारित शिक्षकों के प्रशिक्षणों और विकास कार्यक्रमों की प्रासंगिकता अधिक है। बहुस्तरीय शिक्षण तथा आंशिक भागीदारी जैसी तकनीकों के साथ–साथ हॉवर्ड गाड्‌र्नर के बहुबुद्धियों के सिद्धान्त पर आधारित शैक्षिक योजना को भी समावेशी शिक्षा के लिए बनाए जाने वाली योजना में शामिल होना चाहिए।

'समाधान' की समावेश की व्याख्या उसके शुरुआती अनुभव से निकली और उसने तब जोर पकड़ा जब समावेश सरकारी और शैक्षिक, दोनों तरह की संस्थाओं के लिए केन्द्र में आया। एक सामान्य बच्चे को विशेष–शिक्षा के अपने यूनिट में प्रवेश देना तो हमारे लिए आसान था मगर बौद्धिक अक्षमता से जूझते बच्चे को मुख्यधारा के स्थानीय स्कूल में प्रवेश दिलवाना मुश्किल था। इसलिए हालाँकि हम सामान्य और अक्षमता से जूझते, दोनों तरह के बच्चों को अपने विशेष–शिक्षा यूनिट में प्रवेश देते रहे,

हम बौद्धिक अक्षमता वाले बच्चे को उस अकादमिक स्तर तक लाने के लिए भी काम करते रहे जिस तक पहुँचकर वह मुख्यधारा के स्कूल के साथ सामंजस्य बैठा पाए। इन बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों में दाखिले की हमारी रणनीति तीन बातों पर ध्यान केन्द्रित करती थी – समावेशी शिक्षा को देखने के समुदाय के नकारात्मक नजरिए को समाप्त करना या कम से कम इस चेतना को घटाना; मुख्यधारा के स्कूलों के मुखियाओं और शिक्षकों में इस बारे में ज्ञान के अभाव को दूर करना; और विशेष तौर से अक्षमता से बचे हुए बच्चों के माता–पिता की उस सोच को प्रभावित करना जिसके तहत वे अपने बच्चों का बौद्धिक तौर पर अशक्त बच्चों के "साथ बैठना" भी नहीं स्वीकारते। इसी के साथ इमारतों, खेल के मैदानों, शौचालयों (विशेष तौर से लड़कियों के लिए) का न होना और सामान्य तौर पर बौद्धिक या किसी भी अन्य किस्म की अक्षमता के लिए सहायक मूलभूत ढाँचे के पूर्ण रूप से अभाव की बात भी थी।

निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर की कालोनियों में से कुछ चिह्नित कालोनियों में यह जानने के लिए सर्वेक्षण किया गया कि स्थानीय स्कूलों में समावेशी प्रथाओं के बारे में ज्ञान और जागरूकता की स्थिति क्या है। इससे रणनीति के स्तर पर कई योजनाबद्ध हस्तक्षेपों की शुरुआत करने में मदद मिली। मुख्यधारा के कुछ स्थानीय स्कूलों के शिक्षकों की कार्यशाला में समावेशी शिक्षा पर उनके विचारों, इस शिक्षा को उनके स्कूल में स्वीकार किए जाने, सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों और नीतियों, उनके स्वयं के दृष्टिकोणों और इसका कि 'समावेश' क्या होना चाहिए, दस्तावेजीकरण किया गया। परिणाम आँखें खोलने वाले थे और इनसे मुख्यधारा के स्थानीय स्कूलों में समावेश की अवधारणा पर नियमित, आवश्यकता–आधारित कार्यशालाएँ सूत्रबद्ध करने में भी मदद मिली।

इस सबका सकारात्मक निष्कर्ष यह था कि जिन माता–पिता और शिक्षकों से हम मिले, उन्हीं में से हम मदद करने वाला एक सहायक समूह भी बना पाए। प्रारम्भिक प्रशिक्षण और कार्यशालाओं में अनिवार्य उपस्थिति के बाद उन्होंने पैरोकारों का एक केन्द्रीय समूह बना लिया जिसने समुदाय के साथ समावेश का सन्देश साझा किया। इसी के साथ, हमने समावेशन के लाभों को कई तरह के समूहों के बीच साझा करने के लिए खुली चर्चा का एक मंच भी जारी रखा। व्यापक समुदाय को कठपुतली थिएटर, नुक्कड़ नाटक, अनौपचारिक बातचीत और स्वास्थ्य कैम्पों के माध्यम से समावेशी शिक्षा के प्रति संवेदनशील बनाते हुए ऐसी शिक्षा के हक में माहौल बनाने के मौके तलाशे गए।

सर्वेक्षण 91 स्कूलों में किया गया और इस प्रकार मुख्य धारा के उन स्कूलों के साथ सकारात्मक साझेदारी स्थापित की गई जो बौद्धिक तौर पर अक्षमता के शिकार उन बच्चों को दाखिला देते हैं जो हमारे विशेष शिक्षा यूनिट से उत्तीर्ण होकर निकलते हैं। हमने 5 से 10 वर्ष की आयु वाले बच्चों को म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, दिल्ली के प्राइमरी स्कूलों में दाखिल करवाया है।

फिर से बल देकर कहें तो समावेशन का अर्थ केवल इतना नहीं है कि अक्षमताओं से जूझते बच्चों को स्कूल "जाने की इजाजत हो"। यह केवल एक लक्ष्य नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। यह समानान्तर शैक्षिक व्यवस्थाएँ बनाने या व्यक्तिगत अधिकारों की बात नहीं है और निश्चित तौर पर मौजूदा शैक्षिक व्यवस्था में "फिट" होने की बात भी नहीं है। समावेशी शिक्षा लचीली होती है। बल सीखने पर होता है न कि शिक्षण पर। 'समाधान' की पहलकदमी से प्रकट होता है कि समावेशी शिक्षा लागू की जा सकती है। सबसे बढ़कर, यह सब बच्चों के लिए शिक्षा के मौकों की समानता की बात है।

References

- Lindqvist, B. (1994) *Special Needs Education: Conceptual Framework, Planning and Policy Factors*. Paper presented at the World Conference on Special Needs Education, Salamanca, Spain (From: NU News on Health Care in Developing Countries 2/95, vol.9)
- Ture Johnsson, (2003) Inclusive education CD developed for CBR Network's distance education programme
- Inclusion. *What is in a name?* Diane Richler. Past President, Inclusion International.
- "*Inclusive Education is good common sense*" by Pramila Balasundaram in Mentor magazine, 2011 Bangalore.



प्रमिला बालासुन्दरम 1981 में स्थापित स्वैच्छिक संस्था समाधान की संस्थापक एवं संरक्षक हैं। समाधान का ध्यान बौद्धिक रूप से विकलांग बच्चों की समस्याओं पर है। नई दिल्ली में समाधान के दो केन्द्र ऐसे बच्चों की शुरुआती पहचान करने, उनका उपचार करने और समावेशी शिक्षा देने का काम करते हैं। ये केन्द्र ऐसे बच्चों की माताओं को ऐसे कौशल सिखाने में भी मदद करते हैं, जिनसे उन्हें कुछ आय हो सके। विकलांगता और गरीबी के बीच सम्बन्ध जोड़ने, महिला सशक्तीकरण में समुदाय को शामिल करने तथा स्थानीय संसाधनों का उपयोग करने के नवाचार के लिए उन्हें वर्ल्ड बैंक ने सम्मानित किया है। उनसे lila.bala@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन